International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 18-01-2025, Accepted: 19-02-2025, Published: 06-03-2025
Volume 11, Issue 1, 2025, Page No. 71-72

हठयोग साधना में बन्धत्रय : एक अध्ययन

सीमा सिंह
हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, उत्तप्रदेश, भारत

सारांश
हठयोग साधना में बन्ध एक क्रिया है बन्ध ऊर्जा को प्रवाहित करने और जमा करने की क्रिया है। यह एक आन्तरिक मुद्रा है। बन्ध ऊर्जा के प्रवाह को निर्देशित करने के लिए एक मुहर बनाता है, जिसका उद्देश्य नाड़ी शुद्धि और प्राण वायु को स्थिरता के माध्यम से आध्यात्मिक ऊर्जा (कुण्डलिनी) को जगाने और आध्यात्मिक शक्तियों की सिद्धि के लिए आवश्यक है। गोरक्षशतक में महायोगी गोरखनाथ ने बन्धत्रय उड्डियान बन्ध, जालन्धर बन्ध और मूलबन्ध के अभ्यास को मानव जीवन में परम फलदायी स्वीकारा है।

मूल शब्दः हठयोग, बन्ध, आध्यात्मिक ऊर्जा, कुण्डलिनी, उड्डियान, जालन्ध, मूलबन्ध, मुद्रा आदि।

बन्ध का शाब्दिक अर्थ है बन्धन, बेड़ी या पकड़ना। हठयोग साधना में बन्ध एक क्रिया है जिसे 'शरीर का ताला' कहा जाता है, जो शरीर में महत्त्वपूर्ण ऊर्जा को बाँधता है। यह शरीर के क्षेत्रों को कसती या बन्दर करती है। हठयोग में छः प्रकार के बन्धों को मान्यता दी गयी है जिसमें तीन प्रमुख हैं– उड्डियान, जालन्धर और मूलबन्ध जिसे बन्धत्रय कहा जाता है। दो छोटे बन्ध हस्त बन्ध, पाद बन्ध और महाबन्ध या महान बन्ध शामिल हैं। मूलतः सभी योग इस विश्वास पर आधारित हैं कि प्राणशक्ति के रूप में एक जीवन शक्ति मानव शरीर के माध्यम से प्रवाहित होती है जो एक प्रकार की आदिम ब्रह्माण्डीय ऊर्जा है जो सभी जैविक कार्यों को नियंत्रित करती है। बन्ध में सकेन्द्रित मांसपेशी संकुख्न शामिल होता है, जो शरीर के कुछ क्षेत्रों में रक्त प्रवाह को अस्थायी रूप से प्रतिबन्धित करता है। सैद्धान्तिक रूप से जब आप ताला खोलते हैं तो यह परिसंचरण को पढ़ाता है, रक्त प्रवाह को बढ़ाता है, मृत कोशिकाओं को बाहर निकालता है और लक्षित क्षेत्र में अंगों को फिर से जीवंत और मजबूत करता है। चिकित्सक एकल–बिन्दु एकाग्रता में सुधार और पाचन, चयापचय हार्मोन और यौन स्वास्थ्य का समर्थन करने के लिए बन्ध को श्रेय देते हैं।

'महाबन्ध' (महान ताला) अन्य सभी तीन बन्धों को जोड़ता है अर्थात् मूलबन्ध, उड्डियान जालन्धर बन्ध।[1] मूलबन्ध हठयोग में प्राथमिक बन्ध है, मूलबन्ध का सर्वप्रथम उल्लेख शैवनाथ ग्रन्थ गोरक्षशतक में मिलता है, जो इस सांस पर नियंत्रण पाने और देवी कुण्डलिनी को जगाने की एक तकनीक के रूप में परिभाषित करता है। मूलबन्ध को महर्षि घेरण्ड ने जराविनाशिनी मुद्रा कहा है।[2] इसकी साधना के फल का निरूपण करते हुए घेरण्ड संहिता में उल्लेख है–

संसार समुद्रं तर्तुमभिलषति यः पुमान्।
विजनेषु गुप्ता भूत्वा मुद्रासेनां समभ्यसेत्।।
अभ्यासाद् यत्नतो तर्हि मौनी तु विजितालसः।।[3]

जो व्यक्ति संसार सागर से पार उतरकर मोक्षपद का आस्वाद करना चाहता है उसे एकान्त स्थान में मूलबन्ध का अभ्यास करना चाहिए इससे निश्चय ही मरुत की सिद्धि होती है– शरीर में प्राण स्थिर होकर ब्रह्मरन्ध्र में लय को प्राप्त होता है। आलस्य रहित और मौन धारण कर इसका अभ्यास करना चाहिए। मूलबन्ध के अभ्यास से प्राण अपान, नाद और बिन्दु तथा मन सामरस्य ऐक्य सिद्ध होता है। शिव संहिता में कहा गया है कि यह मूलबन्ध योनि मुद्रा को सिद्ध करता है। योगी वायु को वश में कर आकाश गमन की शक्ति पाता है।

गोरक्षशतक में मूलबन्ध को इस प्रकार परिभाषित किया गया है– "अपान वायु को ऊपर की ओर खींचकर प्राणवायु में मिलाते हुए पैर की एड़ी से योनिस्थान को दृढ़ता से दबाकर गुदा को सिकोड़ना चाहिए। योगी इसे मूलबन्ध कहते हैं। जब अपान ऊपर की ओर मुड़ जाता है और अग्नि के गोले में पहुँच जाता है तब हवा से प्रज्जवलित ज्वाला ऊँची उठती है। परिणामस्वरूप अग्नि और अपान प्राण तक पहुँचते हैं, जो स्वभाव से गर्म है। अत्यधिक गर्म प्राण शरीर में ज्वाला पैदा करता है, जो सोयी हुयी कुण्डलिनी को गर्म करके जगा देता है। डण्डे से पीटे गए सांप की तरह वह फुफकारती है और अपने आप को सीधा करती है जैसे सांप के बिल में प्रवेश करते हुए वह ब्रह्मनाड़ी में प्रवेश करती है। इसलिए योगियों को मूलबन्ध का नियमित अभ्यास बनाए रख्ना चाहिए।"[4] गोरखनाथ जी का कथन है–

पाष्णिभागेन सम्पीड्य योनिमाकुंच्चयेद् गुदम्।
अपान मूर्ध्वमाकृष्य मूलबन्धो विधीयते।।
अपानप्राणयोरैक्यात् क्षयो मूत्रपुरीषयोः।
युवा भवति वृद्धोऽपि सतत् मूलबन्धनात्।।

मोहले इसे रूटलॉक के रूप में परिभाषित करते हैं और आगे निर्दिष्ट करते हैं कि यहाँ जिस जड़ का उल्लेख किया गया है, वह रीढ़ की हड्डी की जड़ है। उड्डियान बन्ध जिसे उदर ताला या ऊपर उठाने वाला ताला भी कहा जाता है, हठयोग में वर्णित और नियोजित उदर बन्ध है। उड्डियान बन्ध का अभ्यास नाभि के पश्चिम भाग और नाभि के नीचे किया जाता है, इसलिए यह उड्डियान बन्ध कहलाता है। नाभि ग्रन्थि का आकर्षण पीठ की ओर करते रहने के कारण योगशास्त्र में आकर्षण बन्ध की संज्ञा प्रदान की गयी है। योगपरक उपनिषदों में निरूपण उपलब्ध होता है कि जिससे कुम्भक के द्वारा बँधा हुआ प्राण सुषुम्ना में प्रवाहित हो उठता है उसे योगियों ने उड्डियान बन्ध कहा है।[5] गोरक्षशतक में कहा गया है–

"उदरात्पश्चिम भागे ह्यसौ नाभेर्निगद्यते।
उड्डियानस्यबन्धोऽयं तत्र बन्धोर्विधियते।।"[6]

ऐसा कहा गया है कि दिन में चार बार इस उड्डियान बन्ध का अभ्यास करने से नाभिदेश और प्राण की शुद्धि होती है। छः मास तक इसका विधिपूर्वक अभ्यास करने से जठराग्नि बढ़ती है, शरीर में रस का संचार होता है, वह पुष्ट होता है। उड्डियान अभ्यास करने से यौवन स्थिर होता है। उदर सम्बन्धी सभी दोषों का क्षय होता है। सभी बन्धों में उड्डियान बन्ध को अनेक योगसिद्ध

पुरुषों द्वारा प्रधान अथवा श्रेष्ठ कहा गया है। महर्षि घेरण्ड ने कहा है कि इसके अभ्यास से मुक्ति अनायास प्राप्त हो जाती है।

उड्डियाने समभ्यस्ते मुक्तिः स्वाभाविकी भवेत्।[7]

उड्डियान बन्ध का अभ्यास खाली पेट करना चाहिए। गर्भवती महिलाओं को इसे नहीं करना चाहिए।

जालन्धन बन्ध हठयोग में वर्णित और नियोजित ठोढ़ी बन्ध है।[8] जालन्धन बन्ध नाड़ियों के जाल को बाँधता है और सिर से गिरने वाले जल (सहस्रार से द्रवित अमृत) को नीचे गिरने से रोकता है, इसलिए यह कण्ठदेश के समस्त दुःखों–विकारों और दोषों को नष्ट करके नीचे की ओर वक्ष पर चिबुक को संयत कर जालन्धन बन्ध का अभ्यास करने से नाभिस्थित सूर्य के मुख में, अग्नि में पीयूष (सहस्रार से द्रवित अमृत) गिरने से रूक जाता है, वायु नही प्रकुपित होती है।[9]

जालन्धरे कृते बन्धे कण्ठसंकोचलक्षणे।
पीयूषं न पतत्यग्नौ न च वायुः प्रकुप्यति।।

वास्तव में कण्ठ को संकुचित कर वायु को रोकना ही जालन्धर बन्ध है। यह बन्ध जरा और मृत्यु का नाश कर शरीर को पुष्ट और स्वस्थ्य रखता है। इस बन्ध से योगी अमृत का पान करता है। योगियों को यह बन्ध योगसिद्धी प्रदान करता है। इसके द्वारा शरीर का अमृत निरन्तर अक्षय बना रहता है। चित्त शान्त और एकाग्र रहता है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि हठयोग में बन्ध एक महत्त्वपूर्ण पहलू है, जो ऊर्जा–शरीर अर्थात् प्राणमयकोश और मानसिक शरीर अर्थात् मनोमयकोश पर उतना ही नियंत्रण पाना, जितना कि मानव अपने भौतिक शरीर अर्थात् अन्नमयकोश पर है। बन्ध का उद्देश्य धीरे–धीरे ऊर्जा पर नियंत्रण पाना और इच्छित रूप से बन्द करना और इच्छित रूप से इन तीनों (ऊर्जा, शरीर, मानसिक शरीर और भौतिक शरीर) का अपनी चरम क्षमता में कार्य करना। यदि अन्नमयकोश, मनोमयकोश, प्राणमयकोश में उचित साम्य नहीं है तो गतिविधियाँ सहज, सरल और आसान नहीं होंगी। बन्ध लगाने से एक बिन्दु पर एकाग्रता, स्थिर और नियंत्रित सांस, शान्त मन, आन्तरिक तन्त्रों पर नियंत्रण, यौन से लेकर हार्मोन, चयापचय और पाचन तक की क्रियाओं को मजबूती प्रदान करती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. दैनिक जीवन में योग, महेश्वरानन्द परमहंस स्वामी, 2000, पृ0 429
2. घेरण्ड संहिता, अनुवादक पं0 जगन्नाथ शर्मा, सम्पादक पं0 रामगोपाल शर्मा, प्रयाग, 1899, पृ0 74
3. वही 16–17, पृ0 74
4. गोरक्षशतक, टीकाकार और सम्पादक रामलाल श्रीवास्तव, प्रकाशन गोरखनाथ मन्दिर, विक्रम सम्वत् 2038, पृ0 17
5. योगोपनिषद्, सम्पादक महादेव शास्त्री (संस्कृत), प्रकाशन अड्यार, 1920, पृ0 26
6. गोरक्षशतक 78, पृ0 16
7. घेरण्ड संहिता 11, अनुवादक पं0 जगन्नाथ शर्मा, सम्पादक पं0 रामगोपाल शर्मा, प्रयाग, 1899, पृ0 45
8. हठयोग प्रदीपिका, सम्पादक द्वारिका प्रसाद सक्सेना, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 2015, पृ0 11